10. कल्याण कला और सेवा कला

(The Art of doing Social Service and Spiritual Welfare)

इसको पढ़कर शायद कोई व्यक्ति सोचेगा कि क्या यह भी कोई कला है? परन्तु गहराई से सोचने पर हर कोई इसी निष्कर्ष पर पहुँचेगा कि वास्तव में यह एक बहुत बड़ी कला है। यह कला तो कोटि-कोटि मनुष्यों में से किसी अति महान् ही के जीवन में हम देख पाते हैं। आज इसी कला से ही तो सभी मनुष्य हीन हो गये हैं, तभी तो वे एक-दूसरे को दुःख देते रहते हैं। एक महात्मा गाँधी में सेवा-भाव था तो देखिये कि उसने एक बड़े जन-समूह को साथ मिला लिया। परन्तु सेवा-कला तो सेवा-भाव से भी उच्च प्रतिभा है क्योंकि 'कला' तो किसी कार्य को कुशलतापूर्वक करने, किसी विद्या में निपुण होने, किसी गुण में सिरमौर होने, किसी विशेषता का मालिक होने का वाचक है।

कई लोग अपने प्रारम्भिक जीवन में सोचते हैं कि ''बड़े होकर हम फलाँ भला काम करेंगे अथवा जन-कल्याण का अमुक कार्य साधेंगे'', परन्तु कुछ ही समय में वे स्वयं भी समाज के दूषित वातावरण में रंग जाते हैं। जिसमें यह कला होती है वे सिद्धहस्त होते हैं और धुन के पक्के तथा अतिमानसी (Genious) होते हैं। कोई भी भला कार्य करने में बहुत परीक्षायें तो पार करनी ही पड़ती हैं। जो कठिनाइयाँ सामने आती हैं, उन सभी का हल निकालना पड़ता है, निन्दा भी सुननी पड़ती है और कदम-कदम पर मरना पड़ता है, झुकना पड़ता है। अतः सभी परिस्थितियों में सबका न केवल भला सोचना, बल्कि उनके कल्याण के लिए कुछ ठोस कार्य करना, अपना तन-मन-धन लगाना, त्याग, नम्रता, सहनशीलता, निःस्वार्थ-भाव और शुभ-चिन्तन की साक्षात् चेतनमूर्ति होना और सेवा कार्य को स्थान तक ले जाना, यह कुछ महत्त्व रखता है और इसके लिए कई गुणों की तथा काफ़ी शक्ति और कुशलता की ज़रूरत है। यह तो इस कला का स्वामी ही कर सकता है। जिसमें यह कला जितनी अधिक हो, वह उतना ही अधिक महान् माना जाता है।

हज़रत ईसा ने, बुद्ध ने तथा अन्यान्य धर्म-स्थापकों ने अपने-अपने दृष्टिकोण से कुछ भलाई करने का विचार तथा कार्य किया। परन्तु इतिहास बताता है कि उन्हें उसके लिए काफ़ी कुछ सहन करना पड़ा। जिनकी हम भलाई करने चलें, यदि वे भी हमारा विरोध करें और हम पर अत्याचार करें तो बताइये कि हमारे मन पर क्या गुज़रेगी? परन्तु उन लोगों ने इस बात पर ध्यान नहीं दिया, तभी तो वे महान् कहलाये और लोगों ने उनको अपने हृदय में स्थान दिया परन्तु उस कार्य के बावजूद भी आज हम देखते हैं कि संसार के लोग विषय-विकारों में गोता खा रहे हैं। अतः कोई चिरस्थाई कल्याण-कार्य करना तो एक बहुत बड़े कला के स्वामी ही का कार्य हो सकता है। उसे ही मनुष्यों में 'ब्रह्मा' कहा गया है और जब-कभी किसी को कोई बात मनवाने तथा किसी को

सद्बुद्धि देकर उसका कल्याण करने की बात आती है तो लोग कहते हैं कि ''अगर ब्रह्मा उतरकर आ जावे तभी इसका कल्याण हो सकता है।'' इसका भाव यह हुआ, परमात्मा के बाद ब्रह्मा में यह कला सर्वाधिक होती है।

यों तो माता-पिता अपने बच्चों का कल्याण चाहते हैं और वे उनकी सेवा भी करते हैं परन्तु आप देखते हैं कि कई बच्चे बड़े होकर संस्कारी, पावन, उच्चाशयी और चरित्रवान सिद्ध नहीं होते। शिक्षक चाहते हैं कि शिष्य महान् बनें परन्तु उनका भी यह मनोरथ और प्रयास सफल नहीं होता। गुरु यत्न करते हैं कि उनके शिष्य साधु स्वभाव के बनें और नेता भी चाहते हैं कि वे समाज का उत्थान करें, परन्तु आज आप परिणाम यह देखते हैं कि ब्लैक मार्केट, मिलावट, रिश्वत, झूठ, छल-प्रपंच ही समाज के सूत्रधारी बने हुए हैं। चाहने पर भी माता, पिता, शिक्षक, गुरु, नेता आदि-आदि कल्याण क्यों नहीं कर पा रहे हैं? कारण यह है कि उनके अपने जीवन में शक्ति, उच्च संस्कार या महान् चरित्र, अथक सेवाभाव या मानव-स्वभाव आदि की कमी है अर्थात् वे इस कला में निपुण नहीं हैं। सबका कल्याण करने की कला तो एक परमपिता परमात्मा ही में है। इसी कारण से उनका तो नाम ही 'शिव' अर्थात् कल्याणकारी है। उन्हें ही माता-पिता, परम शिक्षक, परम सद्गुरु तथा लोकनायक आदि सम्बन्धों से, ''त्वमेव माताच पिता...'' आदि छन्दों द्वारा याद किया गया है क्योंकि वे ही इन सम्बन्धों को सामर्थ्य एवं सद्गुणपूर्ण रीति से निभाकर कल्याण करते हैं। उनके बाद मानव-सृष्टि में, साकार रूप में प्रजापिता ब्रह्मा ही ऐसे हैं जिनको जगत्पिता, ज्ञान का आदि-दाता, श्रेष्ठ गुरु आदि के रूप में भक्त लोग भी याद करते हैं। क्योंकि वे ही 'शिव' के साकार माध्यम के रूप में जगत्-कल्याण का कार्य अथवा सेवा करने में कला-कौशल सम्पन्न सिद्ध हुए। हमने स्वयं अनुभव किया है कि उनका हर संकल्प, हर वचन, हर कदम लोक-कल्याणार्थ होता है।

इस कला वाले की पहचान

अब ध्यान देने पर आप देखेंगे कि दूसरों के कल्याण का कार्य तो वही कर सकता है जिसकी अपनी स्थिति उच्च हो। दूसरों की सेवा में वही सफल हो सकता है जिसके पास सामर्थ्य हो। अतः यह कला आत्मिक शक्ति और दिव्यता का सूचक है। यह कार्य वह कर सकता है जो इतना महान् हो कि वह दूसरों का शुभ-चिन्तक हो, सदा सबका भला चाहे और सचमुच जिसका मन ''सर्वे भवन्तु सुखिना'' के संकल्प से ओत-प्रोत हो, 'चढ़ती कला, तेरे भाने सर्व दा भला' यही उसकी उत्कट अभिलाषा अथवा हृदय की वाणी, वीणा हो। 'प्राणियों में सद्भावना हो, विश्व का कल्याण हो' यह उसका केवल नारा नहीं, विचारों का ताना-बाना हो, वही कल्याण का कार्य करने में सफल सिद्ध हो सकता है। ''मैं सर्व के कल्याण का कार्य कैसे करूँ?'' यह शुभ-चिन्तन निरन्तर उसकी अन्तरात्मा में ऐसा चलता ही रहे मानो उसका मन इन्हीं विचारों से निर्मित हो, दूसरा वह कुछ सोच ही न पाता हो। अपकार करने वालों का भी उपकार करना है, निन्दा करने वालों को भी मित्र मानना है, कृतघ्न से भी घृणा नहीं करना है, बस सबकी सेवा, सेवा और सेवा ही करनी है, यही उसकी बात, यही उसका संकल्प हो। जिनकी सेवा करनी है, उनको अपने मन रूपी नेत्र के सामने ला-ला कर वह कहे, ''शिव बाबा, इसकी बुद्धि का ताला खोल दो ताकि उसकी आत्मा भी जाग उठे और अपने जीवन को उच्च बना ले।'' वह उसके अवगुणों को न सोचकर, उसके किसी गुण से, प्रेम से, आत्मीयता से, निकट सम्बन्ध स्थापित करके हित वचन कह कर, मित्र-भाव से समझाकर उसका उद्धार करा ही डाले। देखिये, कितनी बड़ी लग्न, कितनी तेज़ रफ़्तार और कितने बड़े परिश्रम की आवश्यकता है! किसी में भगवान के प्रति लग्न पैदा करने के लिए पहले अपनी लग्न का पक्का होना ज़रूरी है। दूसरे को मग्न करने के लिए स्वयं मग्न होना आवश्यक है। अन्य को गति देने के लिए अपने में गतिमता होना नितान्त आवश्यक है।

इस कला के लिए निम्नलिखित गुण होना ज़रूरी है

इस प्रकार, आप देखेंगे कि इस कला के लिए मुख्य रूप से इन गुणों अथवा विशेषताओं का होना आवश्यक है— (1) शुभ-चिन्तक और शुभ-चिन्तन और शुभ-कर्त्तत्व (2) लोक संग्रहार्थ सतर्कता और अपने जीवन का निरन्तर सुधार (3) उत्साहवर्द्धक और प्रेरणादायक हर्षोल्लासपूर्ण चेहरा (4) परिस्थितियों का सामना करने की सूझ, सामर्थ्य और सात्विकता (5) अटूट निश्चय, अदम्य हिम्मत और अथक कार्य-प्रवृत्ति (6) उदारता (7) त्याग (8) नम्रता (9) निमित्त-भाव (10) आदर्श जीवन (11) आत्म-विश्वास (12) पक्की धुन।

स्वाभाविक बात है कि जो सदा दूसरों का शुभ सोचता होगा, उसकी बुद्धि ही जन-कल्याण की कोई योजना बनाने में तत्पर होगी और शब्द तथा हाथ, कल्याण-कार्य करने के लिए प्रवृत्त होंगे। पुनश्च, जो दूसरों का कल्याण अथवा उत्थान करना चाहता है, वह सदा लोक-संग्रह का ख़्याल रखेगा अर्थात् यह ध्यान रखेगा कि मनसा, वाचा, कर्मणा उससे ऐसा कुछ न हो जिसे देखकर यदि दूसरे भी वैसा करने लगें तो उनका पतन हो अथवा अकल्याण हो। अतः वह आत्मोन्नति पर ध्यान देगा, अपने जीवन के बारे में सतर्क रहेगा, स्वयं की भूलों को सुधारता चलेगा तथा यदि कोई भूल हो तो खुल्लमखुला उसे 'भूल' मानेगा ताकि दूसरे उसे गुण मानकर उसका अनुकरण न करने लगें। वह हर परिस्थिति में सात्विकता ही का प्रयोग करेगा वरना अन्य किसी भी निकृष्ट उपाय से तो उत्थान हो ही नहीं सकता, न ही दूसरों पर कुछ अच्छा प्रभाव पड़ सकता है। अतः उच्च लक्ष्य की सिद्धि के लिए वह आत्मिक बल, प्रभु की सहायता तथा सद्गुणों के व्यवहार ही पर निर्भर करेगा और उसमें आत्म-विश्वास को नहीं छोड़ेगा। फिर, यह भी निश्चित है कि सेवा करने के लिए त्याग, उत्सर्ग और उदारता की आवश्यकता है।

परन्तु, ये सभी गुण मनुष्य में योग द्वारा ही आ सकते हैं। जब कल्याणकारी (शिव) परमपिता परमात्मा से बुद्धि की लग्न लगी होगी, तभी मनुष्य के मन में दूसरों का कल्याण करने की लग्न पैदा होगी, उसके लिए कोई उपाय भी सूझेगा, सामर्थ्य और सफलता भी मिलेगी। जब मनुष्य देहभान छोड़ेगा, दिव्यता को ही प्रभु से प्राप्त सम्पत्ति मानेगा, तभी उसमें त्याग, उदारता, दानशीलता अथवा सेवाभाव पनपेगा। तभी उसका जीवन निर्मल एवं उच्च भी बनेगा और वह कार्य-क्षेत्र में उतर कर अपने सात्विक जीवन से दूसरे में सात्विकता को भरेगा। अतः इस कला को प्राप्त करने के लिए भी परमपिता परमात्मा शिव ही से योगयुक्त होना चाहिये।

***